शिक्षा में बराबरी से बेहतरी

शिक्षा और आधुनिकता : कुछ समाजशास्त्रीय नज़रिए

दीपेन्द्र बघेल

‘शिक्षा और आधुनिकता : कुछ समाजशास्त्रीय नज़रिए’ के लेखक अमन मदान अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं। वे शिक्षा का समाजशास्त्र, सामाजिक सिद्धान्त और सामाजिक अर्थशास्त्र पढ़ाते हैं। यह छोटी-सी किताब आज के दौर के कुछ बुनियादी बदलावों की और शिक्षा के लिए इनके क्या मायने हैं, इसकी पड़ताल करने की कोशिश करती है।



शिक्षा और आधुनिकता
कुछ समाजशास्त्रीय नज़रिए

लेखक
अमन मदान
एकलव्य प्रकाशन, भोपाल

भारतीय शिक्षा जगत में जिस तरह की बुनियादी चुनौतियाँ उभर रही हैं और शिक्षा तंत्र जिन विकराल समस्याओं से जूझ रहा है, इसके मद्देनज़र अनेक स्थापित नज़रिए नाकाफ़ी दिख रहे हैं। मसलन प्रबन्धकीय कुशलता में माहिर नज़रिए कहते हैं कि बच्चे ही कमजोर हैं, इसलिए उन्हें आगे पढ़ाए जाने से बच्चों पर और व्यवस्था पर भी बोझ बढ़ेगा। इसी कुशलता के नुमाइन्दे यह भी कहते हैं कि शिक्षक भी योग्य नहीं हैं और वे बच्चों की विषय में समझ को निखार नहीं पाएँगे। इन दो मूल लक्षणों के इलाज के नाते हर साल नए-नए लुभावने शब्दों वाले कार्यक्रम आते हैं। साल ख़त्म होते-होते उभारे गए शब्द+ अपनी आभा खोने लगते हैं और फिर नए लफ़्ज़ों के साथ बोर्ड और फ़्लैक्स तैयार होने लगते हैं। नीति नियन्ता शासन, समाज को एक इकाई मानते हुए विद्यार्थी के गुण-दोषों के कारण उसी के भीतर ही मानता है, इसी प्रकार शिक्षक के गुण-दोषों के कारणों को उसी के भीतर ही मानता है और इसी नाते उन्हें ज़िम्मेदार और गुनहगार भी मानता है। पर समाजशास्त्र के पितामह इमाईल दुर्खीम ने बताया था कि व्यक्ति की आत्महत्या का कारण उसके भीतर न होकर सामाजिक व्यवस्था, जो सामूहिक न्यूरोसिस (मनस्ताप) व्यक्ति की इकाई के ऊपर डालती है, उसके कारण ही व्यक्ति आत्महत्या करता है। इन घटनाओं के मूल में समाज के ढाँचे, उसकी ताक़त, क़ायदे, नियम

और समाज में मौजूद दूसरे समूहों और वर्गों की गति भी रहती है। समाजशास्त्र, घटनाओं के विवेचन, स्पष्टीकरण, व्याख्या और मीमांसा में वृहद सामाजिक समाजशास्त्रीय नज़रिए को तरजीह देता है।

समाजशास्त्र का विश्लेषण और अपने ज्ञान पर पहुँचने का रास्ता, वैज्ञानिक पद्धतियों द्वारा तथ्यों को संयोजित कर, विश्लेषणों और व्याख्याओं की पूर्ति कर मूल्यों की जाँच से ही आता है।

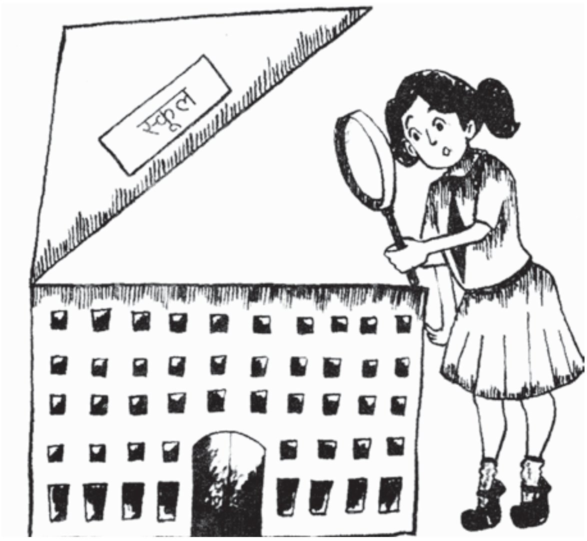
शिक्षा और आधुनिकता : कुछ समाजशास्त्रीय नज़रिए– लेखक– अमन मदान की प्रस्तुत पुस्तक बहुत ही सरसपूर्ण ढंग से लगभग किस्सागो शैली में ढेरों उदाहरणों से महत्त्वपूर्ण समाजशास्त्रीय अवधारणाओं और सिद्धान्तों को पाठकों के सामने रखती है, जिसे पढ़ते हुए पाठक समाजशास्त्रीय नज़रिए भी हासिल करने लगते हैं और कुछ धुँधले से स्कूली जीवन के स्मृति पटल पर चित्र, अवधारणाओं से दृश्यवान होने लगते हैं। अमन मदान, हिन्दी में व्याप्त चिन्तन की एक भारी कमी को भी दूर कर रहे होते हैं। कमी यह है कि व्यक्ति विषय में ज्ञान हासिल करने की विधि को तजते हुए आत्ममुग्धता से कई नतीजों और निष्पत्तियों को मौलिक चिन्तन के नाम पर प्रस्तुत करता है। ऐसे में ज्ञान प्रतिपादन की पद्धति समूचे व्यक्तित्व से ही संचालित हो रही होती है और पद्धति व विधि से नतीजे पर आने का तरीक़ा गौण हो जाता है। अमन, सामाजिक परिघटना को अलग-अलग अवधारणाओं से मय सन्दर्भ परखते हैं। ऐसे में वे बने-बनाए रास्तों पर नहीं चलते और समग्र मूल्यांकन करते हैं। मसलन, वे आधुनिकता की अवधारणा के प्रति न ही पूरे रूमानी होते हैं और न ही रूखे व नकारवादी विश्लेषक।

वे अनेक स्थापित दृष्टिकोणों से अवधारणा को परखते हैं, और विभिन्न मतों और नतीजों को अपने पाठकों के सामने रखते हैं। यहाँ वे पाठक को सोचने के लिए उकसाते हैं कि वह अपने मूल्यों को तय कर, तुलनाएँ कर अपना मत ढूँढ़ें और राय बनाएँ। यहाँ पर अमन में अपनी बात को मनवा लेने का आग्रह नहीं है, वे एक तरह से वैचारिक स्वतंत्रता देकर पाठकों की समझ बनाने के विवेक को जागृत करते हैं। इससे पाठक अन्य सन्दर्भ सामग्री और परिस्थितियों का अध्ययन कर अपनी समझ को निखार सकता है। प्रस्तुत पुस्तक में अधिकांश निबन्ध, 'दिगन्तर' द्वारा प्रकाशित पत्रिका *शिक्षा विमर्श* में छप चुके हैं एवं यह पुस्तक एकलव्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित की गई है। पुस्तक में छह अध्याय हैं। पहले अध्याय में 'शिक्षा का समाजशास्त्र: एक परिचय' है। दूसरे अध्याय में 'जटिल समाजों में शिक्षा' है। तीसरे अध्याय में 'शिक्षा, बाज़ार का विकास और सामाजिक टकराव' है। चौथे अध्याय में 'पूँजीवाद और शिक्षा : कुछ बुनियादी मुद्दे' है। पाँचवे अध्याय में 'औपचारिक संगठनों के माध्यम से शिक्षा' है। छठे और अन्तिम अध्याय में 'आधुनिकता, पहचान और शिक्षा' है।



स्कूली शिक्षा का सामाजिक सन्दर्भ

पुस्तक के कवर पेज का चित्र, जिसे कनक शशि ने बनाया है, इतना प्रभावी है कि वह बच्चों के मन और शरीर पर पड़ने वाले विघटनकारी तनाव को सूक्ष्मता और गहरी संवेदनशीलता से चित्रित करता है। आपसी प्रतियोगिता बच्चों के मन और शरीर को कितनी गहराई से चोट पहुँचाती है, इसका मार्मिक विवरण चित्र में देखा जा सकता है।



समाजशास्त्र सबूतों की पड़ताल करता है

पहले अध्याय में अमन मदान शिक्षा के समाजशास्त्र का परिचय देने के पहले एक सवाल उठाते हैं कि दसवीं पास किसान का बेटा क्या करे। न तो वह किसानी करना चाहता है और न ही किसी नौकरी को करने के क़ाबिल हो पाया है। वे यह सवाल उठाते चलते हैं कि भारत में बदलाव तो तेजी से घट रहे हैं, पर पूर्वजों के दिए गए संस्कारों और आज की पीढ़ी में कैरियर व मूल्य बोध के बीच हम टकराहट को देख सकते हैं। आज होने वाले परिवर्तनों की कल्पना हमारे परिवारों में पहले कभी नहीं की गई होगी। मसलन अब महिलाएँ कह रही हैं कि वे पढ़ना चाहती हैं और सिर्फ़ माँ या पत्नी बनकर नहीं रहना चाहतीं। इसी प्रकार ऐतिहासिक रूप से दूर रखे गए कई समुदाय अब शिक्षा की माँग कर रहे हैं। अमन कहते हैं– 'शिक्षा को ज़्यादातर मनोवैज्ञानिक नज़रिए से देखा जाता है, एक ऐसी गतिविधि की तरह जो सिर्फ़ कक्षा और परिवार तक ही सीमित हो। शिक्षा में सुधार लाने की कोशिशों का ध्यान पढ़ाने की ज़्यादातर बेहतर विधियों और ज़्यादा रोचक पाठ्यपुस्तकों के निर्माण जैसी बातों पर रहता है। मेरी यहाँ पर यह प्रस्तावना है कि इन सब पर समाज के स्वरूप का गहरा असर पड़ता है और इस बात का भी कि समाज में किस तरह के परिवर्तन आ रहे हैं।' वे आगे कहते हैं कि 'निरन्तर आगे बढ़ते तरक़्क़ी पसन्द समाज में बड़ों को छोटे से सीखने में फ़ायदा होता है।' वे आगे कथन करते हैं कि शिक्षा के उद्देश्य और अर्थ का समाज के स्वरूप से गहरा रिश्ता है और इस स्वरूप के बदलाव के साथ शिक्षा के मायने भी बदल सकते हैं।

अमन मदान दैनिक जीवन में बोलचाल में आए आसान-से-आसान लफ़्ज़ों का इस्तेमाल करके शिक्षा के समाजशास्त्र के परिप्रेक्ष्य को समझाने की कोशिश करते हैं। वे इस अध्याय में समझाते हैं कि प्राय: व्यक्तिगत उपलब्धि के रूप में ही योग्यता को समझ कर समाज में गुणगान किया जाता है, पर वे बताते हैं कि योग्यता सामाजिक संसाधनों द्वारा मुमकिन होती है। मसलन, पारिवारिक माहौल और संसाधनों की उपलब्धता से व्यक्ति के भीतर की सम्भावनाएँ योग्यता की शक्ल ले पाती हैं। एक अन्य उदाहरण में वे एक समाजशास्त्रीय अध्ययन का हवाला देते हुए बताते हैं कि भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान में दलित वर्ग के छात्रों को विषय में योग्यता के नाम पर कितना तिरस्कार और अपमान झेलकर सामाजिक बहिष्कार को झेलना पड़ता है। इस तरह के उदाहरणों से समझ में आता है कि घटनाओं को सामाजिक प्रक्रियाओं के नज़रिए से समझना चाहिए। इस अध्याय से सहज ही समझ में आता है कि दलित वर्ग, महिलाओं और

निर्धन वर्ग की शिक्षा को विशेष संवेदनशीलता से समझा जाना चाहिए, क्योंकि इतिहास की धारा में इन सबको शिक्षा का अवसर देने की परम्परा में काफ़ी विरोध से जूझना पड़ता है। मसलन, एक लड़की को घरेलू कामों के साथ खेती और रोज़गार के भी काम करने पड़ते हैं और इसके साथ ही अपनी तालीम हासिल करने की पूरी जद्दो-जहद करनी पड़ती है। यानी विद्यार्थी की भूमिका के साथ घरेलू कामगार और बाहरी मज़दूरी की भूमिका भी एक छात्रा को निभानी पडती है। 'शिक्षा का समाजशास्त्र' एक तरह से हमें वह नज़रिया देता है, जिसमें हम परिवार, जाति संरचना और संसाधन उपलब्धता को देखते हुए शैक्षणिक प्रक्रियाओं में आने वाली चुनौतियों और ख़तरों को सामाजिक नज़रिए से समझकर उसके निदान ढूँढ़ने की दिशा में बढ़ सकते हैं।

दूसरे अध्याय में अमन 'जटिल समाजों में शिक्षा' की चर्चा करते हैं। वे बताते हैं कि मनुष्य की सांस्कृतिक यात्रा सरल समाज से जटिल समाज की ओर रही है। सरल समाज में सम्बन्धों का ढाँचा पारिवारिक और नातेदारी-आधारित होता है। छोटे समूहों में, मसलन, शिकारी समूह घूम-घूमकर अपने कार्य कर जीवनयापन करते हैं। इनमें कार्यों की विशेषज्ञता नहीं होती और नातेदारी के आधार पर वे उत्पादक से लेकर उपभोक्ता की और शिक्षक से लेकर छात्र की सारी भूमिकाओं को निभाते हैं। यहाँ अमन समाजशास्त्र की सरल परिभाषा भी बताते हैं, 'समाजशास्त्र मूल रूप से सामाजिक रिश्तों और भूमिकाओं के अध्ययन का ही नाम हैं।' वे यहाँ पर सरल समाजों को जोड़ने वाली यांत्रिक एकजुटता का ज़िक्र भी करते हैं जो भावनात्मक और भाई-चारे की भावनाओं पर आधारित होती है। अमन बताते हैं कि जटिल समाजों के बनने की प्रक्रिया उद्योगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रियाओं से शुरू होती है, इनमें प्रोफ़ेशनल समूहों की संख्या बढ़ती है, जैसे– इंजीनियर, प्रबन्धक, चिकित्सक, वास्तुकार, डिज़ाइनर, वकील इत्यादि। समाजशास्त्र के पितामह इमाईल दुर्खीम के सहारे अमन कहते हैं कि जटिल समाजों में जैविक एकजुटता बनी रहनी चाहिए जो तमाम तरह के सामाजिक समूहों और विभाजनों के बीच संवाद स्थापित कर सके। वे यह भी कहते हैं कि 'जटिल समाजों में यह बेहतर है कि लोग अपने-आप ही जीना और काम करना सीख लें। इस तरह ज़रूरी है कि वे ख़ुद अपने लिए सोचना भी सीखें। जटिल समाजों की अधिक उलझी हुई भूमिकाएँ यह माँग करती हैं कि लोग अपने काम का स्वतंत्र आकलन करें और तेज़ी से समझ कर निर्णय लें।

पूरे अध्याय का निष्कर्ष इस रूप में सामने आता है कि 'शिक्षा से एक अपेक्षा यह की जाती है कि वह युवा पीढ़ी को जटिल समाज के तौर-तरीक़े सिखाए। हम चाहते हैं कि शिक्षा उन्हें ऐसे सामाजिक ढाँचे के लिए उचित संस्कृति सिखाए।' यह संस्कृति सरल समाजों की नातेदारी-आधारित सरल समाजों की शिक्षा से काफ़ी अलग होगी। वहीं अमन इस अध्याय में विशिष्टतावाद से सार्वभौमिक



शिक्षा का उपहार

संस्कृति की संक्रमण प्रक्रियाओं की चर्चा करते हैं। बेहद आसान लफ़्ज़ों में वे इसे बताते हैं। 'मैं कौन हूँ' का भाव मेरा परिवार और इसका इतिहास व इसके जुड़ाव विशिष्टतावादी संस्कृति को बताते हैं, पर 'मैं मसलन किस स्कूल में पढ़ता हूँ', 'मेरी कारख़ाने या दफ़्तर में पेशेवर भूमिका क्या है', जैसे प्रश्न सार्वभौमिक संस्कृति के पनपने की जगह बनते हैं। शिक्षा का समाजशास्त्र हमें यह बताता है कि आधुनिक शिक्षा किस तरह से जटिल समाज की संस्कृति निर्माण को लक्ष्य में रखकर सार्वभौमिक संस्कृति, व्यक्तिवाद, पेशेवर विशिष्टता और जैविक एकजुटता का विकास करना चाहती है।


लिखित शब्द की तानाशाही

सरल समाज से जटिल समाज के संक्रमण में अनिर्णयों (Anomie) में फँसा व्यक्ति अपने चयनों को लेकर उलझनों में रहता है। मसलन वह फ़ैसला नहीं कर पाता कि उद्योगीकरण और नगरीकरण के निर्वैयक्तिक मूल्यों को स्वीकार करे या मसलन ग्रामीण लोक समाजों के मूल्यों को स्वीकार करे। वह शहरी समाजों या जटिल समाजों में अजनबीयत, बेगानापन या अलगाव महसूस करता है। इस अध्याय में भली-भाँति हम समझ पाते हैं कि शिक्षा अपने उद्देश्यों और लक्ष्यों में किस तरह जटिल समाज की ओर उन्मुख होती है। व्यक्तिवाद, सार्वभौमीकरण, पेशेवर विशिष्टता, कार्य-आधारित नैतिकी और जैविक एकजुटता के मूल्य आधुनिकता में रचे-बसे होकर शिक्षा के स्वरूप को प्रभावित करते हैं।

तीसरे महत्त्वपूर्ण अध्याय में अमन 'शिक्षा, बाज़ार का विकास और सामाजिक टकराव' की चर्चा करते हैं। इस अध्याय की शुरुआत में ही वे कहते हैं कि बाज़ारों के विकास और ख़रीद-फरोख़्त के ज़रिए माल एवं सेवाओं के आदान-प्रदान के बारे में बात करेंगे। अमन आज के समय के महत्त्वपूर्ण लक्षण को बतलाते हैं कि अब हम ऐसे रिश्तों को बदलते हुए देख रहे हैं, जो पहले ग़ैर-मौद्रिक (यानी बग़ैर पैसे के लेन-देन पर आधारित) थे, लेकिन अब इनमें पैसों का लेन-देन महत्त्वपूर्ण हो गया है। वे दर्ज करते हैं कि इन बदलावों का शिक्षा के रोज़मर्रा के अनुभव पर भारी असर दिखता है और उसके उद्देश्यों और पाठ्यचर्या पर भी। अमन यहाँ प्रतिपादित करते हैं कि शिक्षा अगर पारस्परिकता को समृद्ध कर शिक्षक और शिक्षार्थी का गुणात्मक विकास प्रदान करती है। पर अगर बाज़ार ही शिक्षा का निर्धारक हो जाए, तब शिक्षा की क़ुदरती फ़ितरत पर विपरीत असर पड़ता है। मसलन शिक्षकों की तनख़्वाह और विद्यार्थियों की फ़ीस बाज़ार में माँग और आपूर्ति के नियम से तय हो रही है और इस नाते निजीकरण के बढ़ते प्रभाव ने शिक्षा के मूल में रची-बसी पारस्परिकता को क्षत-विक्षत किया है और शिक्षा केवल बाज़ारू लेन-देन की वस्तु बनाई जा रही है। अमन, कार्ल पोलान्यी की भाषा का इस्तेमाल करते हुए कहते हैं कि विभिन्न समाजों में माल और सेवाओं, जिनमें

से शिक्षा भी एक है, के आदान-प्रदान के तीन मुख्य तरीक़े होते हैं– पारस्परिकता (Mutualism), पुनर्वितरण (Redistribution) और जिंसीकरण (Commodification)। इन्हीं तीन तरीक़ों मे हरेक से शिक्षा की फ़ितरत मुक़र्रर होती है। मसलन, पारस्परिकता के मार्फ़त ही शिक्षा अपने पूर्ण मानवीय उद्देश्य की पूर्ति के नाते शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच परस्परता के सम्बन्धों का विकास करती है। यह पारस्परिकता ही तो वह बुनियाद है, जिसपर शिक्षक और विद्यार्थी परस्पर मानवीय सम्बन्धों में रुचि लेकर एक-दूसरे का विस्तार कर, दोनों को परस्पर समृद्ध कर सकते हैं। पर शिक्षा जब जिंसीकरण या बेचनेयोग्य कमोडिटी बन जाती है, तब शिक्षा की प्रकृति पर विपरीत असर बन जाता है और शिक्षक-शिक्षार्थी के बीच के मानवीय रिश्ते यांत्रिक और उपकरणीय हो जाते हैं। शिक्षक सेवा प्रदाता और शिक्षार्थी महज निष्क्रिय उपभोक्ता बन पाता है। ऐसी परिघटना समाज में भीषण ग़ैर-बराबरी और विषमता को जन्म देती है। मसलन, ज़्यादा क्रय क्षमता वाले विद्यार्थियों को अपने विकास के ज़्यादा मौक़े मिलते हैं और कम क्रय क्षमता वाले विद्यार्थी बाज़ार द्वारा संचालित इस दौड़ में मौक़े क्या, बेहद विषम परिस्थिति वाले, हर दिन चुनौतियों और ख़तरों का सामना करते हैं, और अन्ततः कम संसाधन वाले विद्यार्थी, वंचनाकरण और निर्धनीकरण का सामना करते हैं। सामाजिक परिवर्तन के दबाव के चलते बाज़ार और जिंसीकरण के बढ़ते असर के कारण लोगों और साधनों को उनके परिवेश से निकालकर बड़ी आसानी से यहाँ से वहाँ किया जाता है। कार्ल पोलान्यी इसे समाज के अंशों के घुलाव का नाम देते हैं। सामाजिक घुलाव के चलते तमाम रिश्तों, लेन-देन बन्धनों और रूढ़ियों से भी लोग आज़ाद होते हैं। अमन कहते हैं, ज़ाहिर है कि इसके अपने नफ़े-नुक़सान हैं। वे बताते हैं कि



प्रतियोगिता

खेतीहर मज़दूर अकसर अनुसूचित जातियों और जनजातियों से ही होते हैं।

मज़दूरी के बाज़ार के विकास से उनके लिए गाँव से शहर की ओर पलायन करना आसान हो गया है। मजदूर गाँवों की ज़लालत-भरी ज़िन्दगी को छोड़कर शहर भी आना चाहते हैं। भले ही उन्हें शहरों में रिक्शा चलाना पड़े, पर वे सिर झुकाकर निरन्तर तिरस्कार नहीं झेलना चाहते हैं। अमन मदान शिक्षा की ठोस व्यवहारिकी को खोलते हुए बताते हैं कि अब लोग शिक्षा से धन, ओहदा और शक्ति भी चाहते हैं। अमन लगभग आगाह करते हुए कहते हैं कि बाज़ार उन लोगों को ज़्यादा ताक़त देता है जिनके पास ज़्यादा संसाधन हैं।

अमन इस अध्याय में एक और अहम बात स्थापित करते हैं कि लोकप्रिय पाठ्यक्रमों के निर्धारण में भी अमीर वर्ग की भूमिका होती है। निर्धन वर्ग के उत्थान के लिए बेहतर पाठ्यक्रम ज़्यादा लोकप्रिय नहीं होते। इससे निर्धन लोगों की ज़िन्दगी को बेहतर करने वाले पाठ्यक्रम ज़्यादा लोकप्रिय नहीं होते हैं। वे इस नतीजे पर आते हैं कि बाज़ार कई समस्याओं व टकरावों का हल भी देते हैं और कई नए टकराव भी पैदा करते हैं।

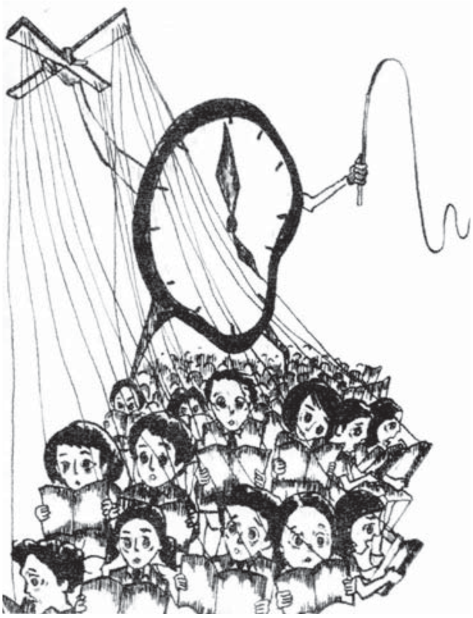
चौथे अध्याय में 'पूँजीवाद और शिक्षा : कुछ बुनियादी मुद्दे' पर अमन चर्चा करते हैं। वे कहते हैं कि भारत में पूँजीवाद का विकास एक ऐसी प्रक्रिया है, जो शिक्षा पर गहरा असर डाल रही है। हमेशा की तरह अमन पूँजीवाद प्रक्रिया के ऐतिहासिक कारणों में जाते हैं। वे बताते हैं कि यूरोप, चीन, सोवियत संघ और भारत जैसे अन्य देशों में पूँजीवाद, सामन्तवाद की कोख से उपजा। मध्य युग में सामन्त राजा के प्रति वफ़ादारी का भाव रखते थे और राजस्व का एक हिस्सा भी राजा को देते थे। सामन्त लोग हज़ारों किसानों को अपने अंकुश / स्वामित्व के नियंत्रण में रखकर किसानों से काम लेते थे। किसानों को पूर्ण स्वामित्व में रखकर पूरी वफ़ादारी से किसानों से हुक्म की तामील करवाते थे। सामन्त की इच्छा ही समूचे सामन्त तंत्र को संचालित करती थी और वफ़ादारी में खोट दिखने पर सामन्त मन-मर्ज़ी से हुकूमत चलाता था और अपने तंत्र को अधीनों की चरम वफ़ादारी से चलाता था। मुद्रा के उस समय प्रचलन में न होने के कारण मज़दूरों को कपड़े, अनाज और कुछ सामान मिल जाता था। ज़ाहिर है, ऐसे समय शिक्षा कुलीन वर्ग के हितों के लिए काम करती थी पर आम जन को विकास के अवसर मुहैया कराने वाली शिक्षा ही नहीं थी।

अमन बताते हैं कि सामन्तवाद की अर्थव्यवस्था धीमी थी और कृषिप्रधान होने के नाते सामन्त मज़दूरों की वफ़ादारी से उन्हें कुछ ज़रूरतों की चीज़ें देकर अपनी हुकूमत बरक़रार रखते थे। इसके बाद उद्योगीकरण, नगरीकरण और मुद्रा के प्रचलन के कारण पूँजीवाद प्रचलन में आता है। पूँजीवाद बड़े सामाजिक बदलावों का कारण बनता है, इसके कारण सब लोगों की तालीम का स्वरूप भी प्रभावित होता है। सामन्तवादी मज़दूर तो वफ़ादारी के चलते अपने मालिक के लिए मरने तक को तैयार हो जाता था और अमन कहते हैं कि इस तरह के सम्बन्ध को बनाए रखने के लिए कई कहानियाँ और मिथक गढ़े जाते थे।


स्कूलों में हाइरार्की

अमन आगे कहते हैं कि पूँजीवाद का युग अनुबन्ध और सौदे का युग है, जिसे कभी भी तोड़ा जा सकता है और फिर बनाया भी जा सकता है। वे आगे कहते हैं कि आर्थिक सत्ता का आधार सामन्तवाद की तरह ज़मीन नहीं है, बल्कि मुद्रा के रूप में पूँजी को ज़्यादा-से-ज़्यादा एकत्रित करने की क्षमता है। जिनके पास ज़्यादा पूँजी होती हैं, वे बाज़ार को अच्छी तरह से अपनी मुट्ठी में रख सकते हैं और कम-से-कम लागत पर ज़्यादा कुशल तरीक़े से उत्पाद बना सकते हैं। वे आगे यह भी कहते हैं कि ऐसे में ज्ञान की प्राथमिकता, महत्त्व और अर्थ में फ़र्क़ आ जाता है। वह ज्ञान महत्त्वपूर्ण हो जाता है जो बता सके कि किसी काम में कितनी मेहनत की गई है और सबसे कम लागत में अधिक-से-अधिक फ़ायदा हासिल करने का क्या तरीक़ा हो सकता है। अमन आगे कहते हैं कि पूँजीवाद की माँग है कि शिक्षा लोगों को नौकरियों के क़ाबिल बनाए और सामन्तवादी समाजों में दी जाने वाली शिक्षा की तरह महज़ संस्कार न दे। वे दूसरे लोगों के दृष्टिकोण को भी रखते हैं कि शिक्षा को बाज़ार की तरह चलना चाहिए। मगर इसके विरोध में कुछ लोग कहते हैं कि ऐसा करने से सिर्फ़ अमीर अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दे पाएँगे और ग़रीब पीछे रह जाएँगे। अमन कहते हैं कि पूँजीवाद ने शिक्षा व्यवस्था के सामने कई सवाल खड़े किए हैं। आगे अमन महत्त्वपूर्ण कथन करते हैं कि भारत में पढ़ा-लिखा

वर्ग जो पक्की नौकरियों में है, अभी भी भारत में अल्पसंख्यक ही है। भारत में दूसरा विशाल वर्ग जैसे कि किसान, कारीगर, पशुपालक इत्यादि शिक्षा व्यवस्था में फैले होते हैं और रोज़गार बाज़ार से बाहर हो जाते हैं। वे पूँजीवाद में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर्विरोध अजनबीयत को बताते हैं, जो अपने काम से अलगाव के नाते असन्तुष्टि या काम के फल न मिलने से बनती है, अपने काम में आनन्द न मिल पाना पूँजीवाद में असन्तुष्टि और तनाव का बड़ा कारण है। शिक्षा में भी अजनबीयत के अहसास को महसूस किया जा सकता है। मसलन एक छात्र जो ख़ुद को कक्षा में पढ़ाई जा रही बातों से जोड़ नहीं पाता क्योंकि शिक्षक पाठ्यक्रम पूरा करने की हड़बड़ी में विषय पर खुल कर बात ही नहीं कर पाता।

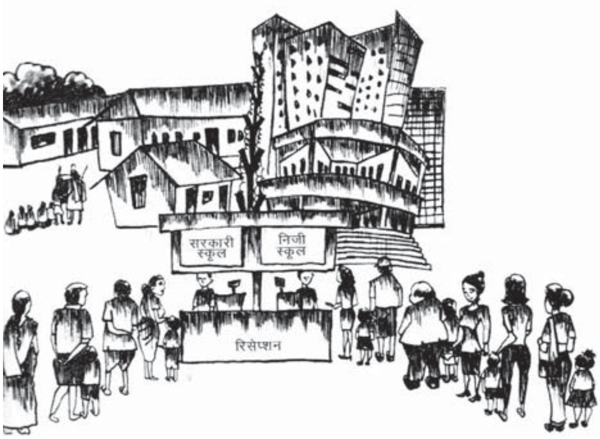


घड़ी की तानाशाही

अमन आगे समझाते हैं कि पूँजीवाद ने बीसवीं शताब्दी में श्रमिकों के साथ कई तरह के समझौते किए और उन्हें बेरोज़गारी भत्ता और बढ़ी तनख़्वाहें दीं। पश्चिमी यूरोप और कनाडा में सामाजिक जनतांत्रिक सरकारों ने कल्याणकारी राज्य बनाए। यहाँ सब बच्चे सरकारी स्कूलों में जाते दिखते हैं, तो यह पूँजीवाद के साथ-साथ इन राजनीतिक प्रक्रियाओं के कारण ही मुमकिन हो पाया है। वे बताते हैं कि इन मुल्कों में अच्छी शिक्षा बनी ही इन समझौतों से है, जिनमें पूँजीवाद सरकार और कई वर्ग एवं समूहों ने आपस में करार किया। भारत में पूँजीवाद के इतिहास की चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि 1991 में इसी विचारधारा के चलते भारत में आर्थिक उदारवाद की शुरुआत की गई। तब से इस विचारधारा का असर अधिकांश राजनीतिक पार्टियों के बीच फैल चुका है और इसका असर कई राज्य और केन्द्र सरकार की नीतियों में दिखता है। अमन बताते हैं कि नियमित नौकरियों की बजाय ठेके या कॉन्ट्रैक्ट पर दी जाने वाली नौकरियाँ बढ़ी हैं और अब बहुत से शिक्षक कॉन्ट्रैक्ट पर पढ़ाते हैं। वे यहाँ पर प्रतिपादित करते हैं कि पूँजीवाद और उसपर उठते विवादों को देखे बिना हम आज के भारत में शिक्षा की भूमिका को समझ ही नहीं सकते हैं। वे अन्त में नतीजे पर आते दिखते हैं कि शिक्षा, पूँजीवाद और सरकार दोनों से अभिन्न तरीक़े से जुड़ी है, चाहे वह पाठ्यक्रम में शामिल ज्ञान का मामला हो या शिक्षकों की छवि का, अथवा विद्यार्थियों के सीखने और उनके द्वारा अर्जित मूल्यों का।

पाँचवे अध्याय में 'औपचारिक संगठनों के माध्यम से शिक्षा' में अमन कहते हैं कि पूँजीवाद के विकास और रिश्तों के घुलाव के चलते बड़े-बड़े कारख़ानों और संस्थाओं का बनना मुमकिन हो जाता है। मैक्स वेबर की ब्यूरोक्रेसी की अवधारणा यानी औपचारिक संगठनों की भूमिका पर अमन मदान विस्तारपूर्वक चर्चा करते हैं। ब्यूरोक्रेसी अर्थात शीर्ष पद पर बैठा नौकरशाह, प्रबन्धक पदानुक्रम यानी पद संरचना द्वारा श्रम के विभाजन से कार्य के छोटे-छोटे हिस्से कर व्यवस्थित समय-सारिणी द्वारा उद्देश्यों को प्राप्त करता है। औपचारिक संगठनों का आकार बेहद बड़ा होने के कारण नियमों एवं प्रक्रियाओं के मार्फ़त काम का रुटीनीकरण हो जाता है। निर्वैयक्तिक व्यक्तित्व के चलते काम में एक

तरह की भावशून्यता और दोहराव आने लगता है। इसका सीधा और व्यापक असर बढ़ी शिक्षा प्रणालियों पर दिखता है। सचिवालयों में शिक्षकों और विद्यार्थियों से जुड़े नीतिगत निर्णय, फिर स्कूलों में विषयवार समय-सारिणी, कक्षाओं के बँटवारे और शिक्षक की विशेषज्ञतानुसार समय-सारिणी का यांत्रिक दोहराव, इन दोहरावों में फँसी यांत्रिक प्रक्रियाओं के कारण शिक्षक अधीनस्थ कर्मचारी की तरह व्यवस्था में फँस जाता है। उसे बार-बार आदेश और दिशा-निर्देश अपने काम को अंजाम देने के लिए दिए जाते हैं। ऐसे में उसकी भाव ऊर्जा और पहलक़दमी खोने लगती है। पढ़ने वाले विद्यार्थी में रुचि लेकर उत्साहपूर्वक सीखने-सिखाने की इच्छा निर्जीव होने लगती है, क्योंकि सीखने-सिखाने की विधियों में यांत्रिकता आ जाती है और शिक्षक-विद्यार्थी के परस्परतापूर्ण सम्बन्धों में रूखापन आने लगता है। अमन यहाँ पर बताते हैं कि औपचारिक संगठन केवल तात्कालिक लक्ष्यों पर ध्यान देते हैं, ताकि तात्कालिक ज़रूरतें पूरी हो सकें। मैक्स वेबर इसे उपकरणवादी सोच कहते हैं जिसमें केवल मतलबी और तकनीकी तरकीबों से काम किया जाता है एवं भावना, मूल्य, सौन्दर्य और जीवन के तमाम पहलुओं को अनदेखा किया जाता है। मैक्स वेबर का मानना था कि औपचारिक संगठनों से हम कुछ सार्थक और बेहतर ढंग से कर पाते परन्तु न केवल ये संगठन ख़ुद ही लोहे का पिंजड़ा बनते गए हैं बल्कि स्कूल भी लोहे के पिंजड़े बन कर रह गए हैं। अमन सुझाते हैं कि औपचारिक संगठन की भावना से संचालित स्कूलों में प्रयोगशीलता के चलते, मानवीय रिश्तों के पनपने की बात की जा रही है, जिससे स्कूलों में सजीव तरीक़ों से सीखने-सिखाने की गतिविधियाँ शक्ल ले सकें।



शिक्षा में जिंसीकृत लेन-देन

छठे और आख़िरी अध्याय में अमन 'आधुनिकता, पहचान और शिक्षा' की चर्चा करते हैं। वे कहते हैं कि आज अलग-अलग ताक़तें शिक्षा को विपरीत दिशाओं में खींच रही हैं जहाँ परस्पर विरोधी और सांस्कृतिक रुझानों में खुल कर टकराव भी हो रहे हैं। विभिन्न आर्थिक और राजनीतिक ताक़तों का टकराव भी आज की शिक्षा में साफ़ दिख रहा है। अमन कहते हैं कि संरचनात्मक और व्यापक प्रक्रियाओं के जरिए उन्होंने जटिल समाजों के उदय, बाज़ारीकरण और संस्थाओं के तार्किकीकरण की प्रक्रियाओं पर बात की है। वे इस नतीजे को हमारे सामने रखते हैं कि स्कूलों और विश्वविद्यालयों में चलने वाली प्रक्रियाएँ हमारे बुनियादी सम्बन्धों और पहचानों को तय करती हैं। वे कहते हैं कि ये प्रक्रियाएँ संरचनात्मक रूप से इसलिए अहम हैं कि वे बहुत सारी स्थितियों को बुनियादी सन्दर्भ या आकार प्रदान करती हैं, जिनमें हम लोगों की शिक्षक, विद्यार्थी, पाठ्यचर्या निर्माणकर्ता या प्रशासक के रूप में भूमिकाएँ भी शक्ल ले रही होती हैं। वे कहते हैं जटिल समाजों का निर्माण, बाज़ारीकरण और संस्थाओं का तार्किकीकरण आधुनिकता के ही लक्षण हैं। वे बताते हैं कि आधुनिकीकरण का बदलाव ख़ुद को और अपनी दुनिया को समझने के लिए तर्क के अधिकाधिक प्रयोग की दिशा में रहा है। यहाँ तक कि अपने विकल्पों को भी तर्क की कसौटी पर कसने की बात है। अमन कहते हैं कि समाज विज्ञान का विकास, आधुनिक-तावादी चिन्तन यानी इसी लौकिक जगत के कार्य-कारण के समझने

के सिलसिले को बताता है। मसलन हम ग़रीबी के लक्षण को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक कारणों की पड़ताल करते हुए समझने की कोशिश करते हैं। यह तरीक़ा ग़रीबी को प्रभु इच्छा या पूर्वजन्म के कर्म या भाग्य के मिथकीय कारणों से नहीं समझता। अमन यह भी कहते हैं कि आधुनिकता और तार्किकता को लोग ठीक तो मानते हैं पर इन्हें संस्कृति द्वारा सन्तुलित किए जाने पर ज़ोर देते हैं।



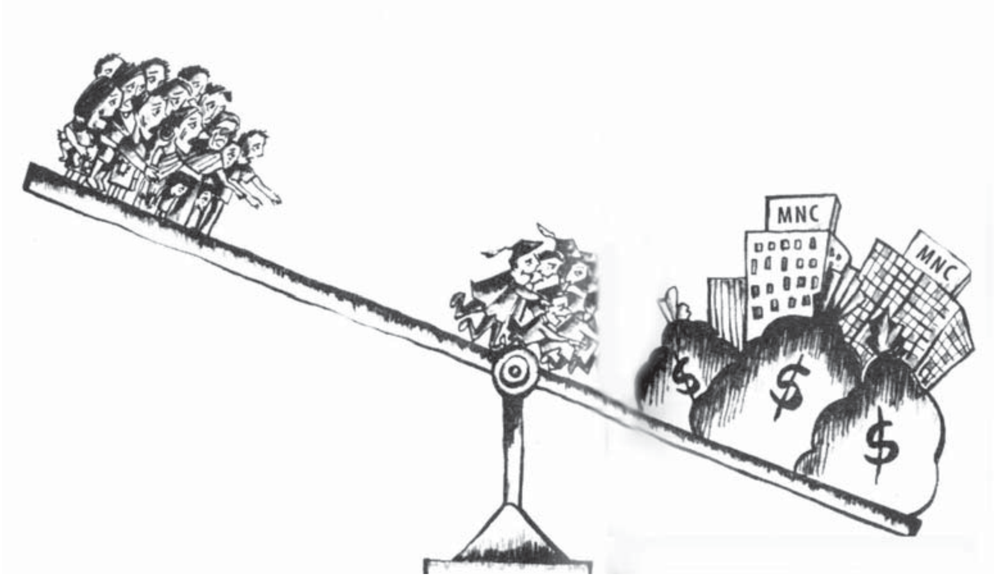
स्कूल जीवन का एक नमूना

अमन कहते हैं कि बंगाली पुनर्जागरण, आर्य समाज, सती प्रथा का अन्त, विधवा पुनर्विवाह, स्वाधीनता आन्दोलन इसी तरह के बहुत सारे बौद्धिक और सामाजिक आन्दोलन हैं, जिनमें भारतीयों ने आधुनिकता का अपना भारतीय संस्करण खोजने और रचने की कोशिश की है। उन्होंने कई पारम्परिक मान्यताओं को यह कहकर नकारा कि यह आज के दौर में ठीक नहीं है और शिक्षा के नए मायने भी ढूँढ़े। अमन यहाँ पर तीन प्रवृत्तियों को रेखांकित करते हैं, जिनका असर समूची शिक्षा व्यवस्था और स्वयं की गढ़ी गई पहचान पर पड़ता है। पहली प्रवृत्ति को वे आधुनिकता की आलोचक मानते हैं, जिसमें आधुनिकता स्थानीय विविधता को नज़रअन्दाज़ करती है और सबपर एक ही जवाब थोपती है। मसलन, स्कूली वर्दी उबाऊ तो हो सकती है पर वह ख़ास संस्कृति की नुमाइन्दगी भी कर सकती है। अमन आगे कहते हैं कि संस्कृति और पहचान के तल पर अगर आधुनिकता को लागू करते हैं, जिसमें नौकरशाहीकरण और पूँजीवाद शामिल हैं, तो समस्याएँ हर जगह उठने लगती हैं। वे आगे कहते हैं कि अब कुछ लोग आधुनिकता को ख़ारिज करने की बात उठा रहे हैं। उनके मुताबिक ईरान से अमरीका तक फिर से पहचान और धर्म की तरफ लौटने लगे हैं। आधुनिकता के दौर में विज्ञान की सर्वोच्चता इस बात पर आधारित थी कि विज्ञान हर चीज़ का उत्तर दे सकता है मगर हमारे उथल-पुथल वाले दौर को देखकर लगता है कि हर सवाल का एक ही उत्तर नहीं हो सकता। आधुनिकता से आगे वाली अवस्था और उस पर सवालिया निशान लगाने वाली प्रवृत्ति को अमन समाजशास्त्री पदावली में उत्तर-आधुनिकता बताते हैं। दुनिया के बहुत सारे लोगों ने ऐसे तरीक़े ढूँढ़ने की कोशिश की है, जो आधुनिकता को सिरे से ख़ारिज नहीं करते पर इसकी समस्याओं और चुनौतियों को दूर करने का प्रयास करते हैं। अमन कहते हैं कि शिक्षा के इलाक़े में पूँजीवाद को सिरे से ख़ारिज करने की बजाय पूँजीवाद, नौकरशाहीकरण और सार्वभौमिकतावाद से आने वाली चुनौतियों और समस्याओं से रूबरू होने की बात की जा रही है। अमन कहते हैं कि कक्षाओं की बहुत सारी चुनौतियाँ दरअसल नौकरशाहीकरण से ही उपजती हैं। बड़ी संख्या में पढ़ाने की चाह से हम रुटीनीकरण और रचनात्मकता के दमन की ओर बढ़ते हैं। फलस्वरूप निजी सम्बन्धों और श्रम के सांस्कृतिक या सौन्दर्यात्मक सुख की क़ीमत पर एक तकनीकी और व्यवहारिक तर्कशीलता को बढ़ाया जाता है। पुस्तक के अन्त में वे एक

केन्द्रीय सवाल पूछते हैं जिससे शिक्षा व्यवस्था की फ़ितरत तय होती है– 'क्या हम ऐसी शिक्षा व्यवस्था बनाना चाहते हैं जो हमारी बुनियादी मानवीयता को अभिव्यक्ति दे या सिर्फ़ ऐसी व्यवस्था, जो सिर्फ़ ज़्यादा-से-ज़्यादा मुनाफ़े और नियंत्रण की चाहत को बढ़ाए?'

पुस्तक की एक और रचनात्मक उपलब्धि, अवधारणाओं के सृजनात्मक अनुप्रयोग के साथ इसमें दिए गए लगभग बावन चित्र हैं। ये बावन चित्र अमूर्त अवधारणाओं को बेहद प्रभावी ढंग से चित्रित करते हैं। अबीरा बन्धोपाध्याय के ये चित्र प्रतियोगिताओं के विक्षोभ, तनाव, स्कूलों में अरुचि, बच्चों पर अपेक्षाओं के दबाव, बच्चों के हर्ष, वर्गों के आपसी द्वन्द्व, स्कूल का यांत्रिक स्थापत्य, समाजीकरण के स्तर, जटिल समाज, सांस्कृतिक समानता, सामाजिक मेल-जोल, शिक्षा के लेन-देन, शिक्षा के उद्देश्य, स्कूलों में श्रम का विभाजन, सामाजिक मनमुटाव, नौकरशाही में दबा शिक्षक जैसी अनेकों जटिल अवधारणाओं को बेहद सूक्ष्म भाव-बोध के साथ व्यक्त करते हैं। इसमें अवधारणाएँ अपने भावनात्मक जगत के साथ प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त हो पाती हैं और शिक्षा का समाजशास्त्र, चित्रों के सटीक उदाहरण से सजीव होने लगता है। सीखने-सिखाने की विधियों में चित्रों द्वारा अवधारणाओं को सार्थक रूप से अभिव्यक्त करने का यह प्रयास बेहद अर्थवान है। इस प्रकार से चित्रों द्वारा अवधारणाओं को प्रकट करने के रचनात्मक प्रयासों की एक परम्परा बनेगी, ऐसी उम्मीद ज़रूर की जानी चाहिए।

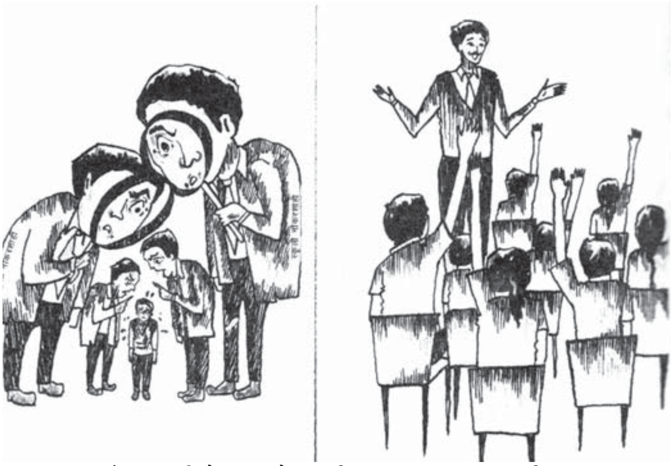
इन छह अध्यायों में हम शिक्षा के समाजशास्त्र की कुछ अवधारणाओं को जानना शुरू करते हैं, समझते हैं और उन्हें अलग-अलग सन्दर्भों और परिणामों में इस्तेमाल करना सीखते हैं। इन अवधारणाओं के आपसी सम्बन्धों को हम देखते हैं और शिक्षा की बड़ी तस्वीर को राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक ढाँचे के असरों को प्रक्रियाओं से समझना शुरू करते हैं। इस नाते हम शिक्षा जगत की मूल समस्याओं को मसलन, शिक्षक की भूमिका, विद्यार्थी की भूमिका, पाठ्यचर्या की प्रकृति, स्कूली तंत्र में विन्यस्त नौकरशाही के ढाँचे, सीखने-सिखाने के तरीक़े को व्यापक सन्दर्भ में समझना शुरू करते हैं। इस नाते हम जटिल समाज की अवधारणा, शिक्षा के मार्फ़त सार्वभौमीकरण, मशीनी अनुबन्धीय और जैविक एकजुटता, बाज़ार का



शिक्षा पर बाज़ार का प्रभाव

विकास, निजीकरण, पुनर्वितरण, पूँजीवाद, सामाजिक टकराव और परिवर्तन, अजनबीयत, शोषण, औपचारिक संगठनों की उपकरणीय तार्किकता, आधुनिकता, आधुनिकता विरोध, उत्तर-आधुनिकता, पहचान के निर्माण जैसी अवधारणाओं को दैनन्दिन उदाहरणों से बेहद सरल बोलचाल की भाषा में समझते हैं, जिससे ये अवधारणाएँ मूर्त होकर समझ में आने लगती हैं। वे हर अध्याय के अन्त में पर्याप्त सन्दर्भ सामग्री देते हैं, जिसकी मदद से पाठक अपनी समझ का विस्तार कर सकते हैं। अवधारणाओं के प्रयोगों के बावजूद अमन मतावलम्बी होकर मत का प्रसार नहीं करते हैं बल्कि समाज वैज्ञानिक होने के नाते उनकी निगाह तथ्यों और मूल्यों पर रहती है, जिससे वे अलग-अलग घटनाओं एवं परिघटनाओं का सघन वर्णन कर स्पष्टीकरण देते हैं। अपनी तटस्थता बनाकर रखते हुए वे अवधारणाओं के विभिन्न सन्दर्भों में सीमा और सम्भावना, दोनों को समझाते हुए दी हुई हक़ीक़त के विभिन्न आयामों को हमारे सामने रखते हैं। इस नाते अपने पाठकों को भी इन्हीं अवधारणाओं के प्रयोगों से अपने अवलोकनों से अपने नतीजे पर पहुँचने के लिए उकसाते हैं। इस नाते वे पाठक की मूल समझ और कल्पनाशीलता और संवेदनशीलता के विस्तार में उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। अमन के आग्रहों में यह तो समझ में आता है कि वे फ़ंक्शनलिस्ट (प्रकार्यवादी) नज़रिया न रखकर सामाजिक परिवर्तनवादी नज़रिया रखते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक शिक्षा के समाजशास्त्र की कुछ अवधारणाओं को रख पाती है, पर जैसा अमन भी क़बूल करते हैं कि वे अगली पुस्तक में ‘भारत की वर्ग व्यवस्था और उसका शिक्षा से सम्बन्ध’ पर लिखना चाहते हैं। इस पुस्तक में भी वर्ग और जाति की चर्चा पूरी नहीं हो पाई है। भारतवर्ष में कथित निम्न जाति के विद्यार्थियों और आदिवासी बच्चों को कितना गहरा तिरस्कार, अपमान और बहिष्कार झेलना पड़ता है और तमाम विधिक प्रावधानों के बावजूद अभी भी बच्चों को मिड-डे मील में भी जातिवादी दुराग्रह के कारण भारी अपमान और तिरस्कार झेलना पड़ता है। अनेक समाजशास्त्रियों ने इसपर अन्तर्दृष्टिपूर्ण ढंग से विवेचन कर गम्भीर विश्लेषण का कार्य किया है। प्रख्यात लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि की पुस्तक *जूठन* बताती है कि शिक्षा व्यवस्था में भी कठोर जातिवादी दुराग्रहों के चलते बच्चों को जाने-अनजाने कितना अपमान झेलना पड़ता है। अमन से अपेक्षा की जा सकती है कि वे भारतीय शिक्षा व्यवस्था में विन्यस्त अपमानवादी सामाजिक श्रेणीकरण की परतों का ख़ुलासा करें।



नौकरशाही के साए में दबा शिक्षक बनाम स्वायत्त शिक्षक

प्रस्तुत पुस्तक में स्कूल की तस्वीर भी साफ़ नहीं होती। मसलन, वह स्कूल क्या केन्द्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय, राज्य सरकार का स्कूल, निजी स्कूल या अभिजात्यपूर्ण पब्लिक स्कूल है। यह नीतिगत प्रश्न भी ज़रूरी है कि सभी स्कूलों को समान स्कूल क्यों नहीं बनाया गया है, देशभर में समान स्कूल व्यवस्था विकसित क्यों नहीं हो पाई। इसका भी समाजशास्त्रीय विश्लेषण अमन से अपेक्षित है। समाजशास्त्रीय सामान्यीकरण तो अमन प्रस्तावित करते हैं पर समस्याओं की गिरफ़्त से निकाल सकने वाले

विकल्पों की समाजशास्त्रीय पड़ताल इस पुस्तक में अमन शायद सीमित जगह के कारण नहीं करते।

मसलन, पूँजीवाद का शिकंजा शिक्षा व्यवस्था पर तो है पर क्या शक्ति समीकरणों का विवेचन करने वाली शिक्षा व्यवस्था, जो सोच, विचार, विवेक, संवेदना पर ज़ोर देती है, आख़िर क्यों विकसित नहीं हो पाती। नौकरशाही के शिकंजे से विकसित मुल्कों की शिक्षा व्यवस्था बाहर निकलकर मानवीय हो पाई है, पर ऐसी भारतीय वजहें क्या हैं जिससे नौकरशाही का मानवीय और दायित्वपूर्ण चेहरा भारतीय शिक्षा व्यवस्था में नहीं विकसित हो पाया। इसका भी समाजशास्त्रीय विवेचन अमन आगामी पुस्तक में कर सकते हैं। आधुनिकता विरोध और उत्तर-आधुनिकता की प्रवृत्ति भारतीय शिक्षा में वर्चस्वकारी क्यों हो रही है। इसके ख़ुलासे की भी अपेक्षा है। इसी प्रकार सांस्कृतिक-सामुदायिक पहचान का ज़ोर भारतीय शिक्षा व्यवस्था में क्यों बढ़ रहा है, इसकी विस्तृत विवेचना की भी अमन से अपेक्षा है। कुल मिलाकर इस पुस्तक को पढ़कर, चर्चाएँ कर,वाद-विवाद कर, शिक्षा के समाजशास्त्र का देशी विमर्श यानी हिन्दी भाषाई विमर्श किया जाना चाहिए जिससे यह विषय भी विकसित होकर लोगों को शिक्षा के समाजशास्त्र यानी बढ़ी तस्वीर देखकर विश्लेषण के औजारों से सक्षम बनाए। इससे भारतीय शिक्षा व्यवस्था के मौजूदा विमर्श में समाजशास्त्रीय चिन्तन की गम्भीर कमी पूरी हो सकेगी।

दीपेन्द्र बघेल ने अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन भोपाल में दो वर्षों तक शिक्षा के समाजशास्त्र के स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्य किया है। आपकी शिक्षा और सामाजिक मुद्दों के अध्ययन में गहरी दिलचस्पी और साहित्य और दर्शन के अध्ययन के प्रति गहरा रुझान है। अनेक मुद्दों पर लेखन और पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित। वर्तमान में माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय में प्रभारी कुलसचिव हैं।
सम्पर्क : deependralabyrinth@gmail.com